बिहार शोध समागम
BIHAR SHODH SAMAAGAM
Multidisciplinary, Multi-Lingual, Peer Reviewed /Refereed Open Access Journal
Vol. 3, Issue 3, July-September, 2025
Available online : https://www.biharshodhsamaagam.com/
ISSN : 3048-6971
(ONLINE)

सांप्रदायिकता की लपट में 'अमृतसर आ गया है'

ज्योति सिन्हा
शोधार्थी
विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

समकालीन हिन्दी कथा साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर भीष्म साहनी यथार्थोन्मुख कहानियों, उपन्यासों तथा नाटकों के लिए विशेष रूप से ख्यात हैं। इनका कथा साहित्य अपने रचनाकाल और तत्कालीन सामाजिक–राजनीतिक पार्श्वभूमि के कारण भारत विभाजन आधारित साहित्य की आधारशिला है। इनकी कहानियों, उपन्यासों और नाटकों में सांप्रदायिकता के साथ–साथ उस समूचे विभाजनकारी शोषण तंत्र की पहचान पूरी स्पष्टता से सामने आती है, जो मनुष्य को धर्म, जाति, वर्ग, आयु तथा भाषा आदि के आधारों पर बांटता है। भाईचारा, सहिष्णुता और करुणा को मिटाता है।

भीष्म साहनी के जीवन के लगभग 32 वर्ष अविभाजित भारत के रावलपिंडी शहर में बीते थे, जब 1947 में राजनीतिक घटनाक्रम अचानक से बदलने लगे और सांप्रदायिक खाईयां इस कदर बढ़ गईं कि पाकिस्तान बनना तय हो गया। तब उनके परिवार को अपना घर,जमीन–जायदाद और व्यापार छोड़ कर भारत आना पड़ा। उन्होंने अपनी आत्मकथा 'आज के अतीत' में उन क्षणों को याद करते हुए लिखा है कि "यों भी कोई अपना घर छोड़ देता है? हुकूमतें तो बदलती रहती हैं पर रियाया भी क्या अपना घर–बार छोड़ जाती है? ऐसे ही विचार मेरे मन में भी थे जब 13 अगस्त के दिन मैं फ्रंटीयर मेल पर सवार हुआ और पिताजी से यह कहकर कि मैं सप्ताह–भर में लौट आऊँगा, कि मैं दिल्ली में आजादी का जश्न देखने जा रहा हूँ जब लालकिले पर भारत का झंडा फहराया जाएगा, आदि। दिल्ली पहुँचने की देर थी कि पता चल गया कि लौट पाना असम्भव हो गया है, रेलगाड़ियों का आना–जाना बंद हो गया था। सहसा ही मेरे लिए सारा चित्रपट बदल गया। मेरे लिए क्या, हमारे परिवार के लिए।.."[1] यह सदमा सरहद के दोनों पार रहने वाले सभी धर्मों के लोगों के लिए समान था। लेकिन सरहद के उस पार या आज की शब्दावली में कहें तो पाकिस्तान के मूल निवासी मुस्लिम धर्मावलंबियों के अलावा अन्य धर्मावलंबियों के लिए बेहद संकटपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो चुकी थी। क्योंकि भारत में महात्मा गांधी, नेहरू, पटेल जैसे राष्ट्रीय नेता समाज को सांप्रदायिकता विरोधी चेतना देने का निरंतर प्रयास कर रहे थे, जिसका समाज पर कमोबेश कुछ प्रभाव भी पड़ रहा था लेकिन सरहद के उसपर राष्ट्रीय नेताओं की ओर से ऐसी किसी कोशिश का ऐतिहासिक साक्ष्य ध्यान में नहीं आता! उस दौर में जनमानस की चेतना मात्र पर छाए काले स्याह बादल की झलकियां भीष्म साहनी द्वारा अपनी आत्मकथा में दर्ज निम्नांकित शब्दों में देखी जा सकती है:

"हिन्दू –सिख उत्तरोत्तर अकेले पड़ रहे थे। पहले लोग मिल–जुलकर फैसले करते थे कि क्या करें, किस ओर कदम उठाएँ। अब हर व्यक्ति, हर परिवार अपने भाग्य के साथ स्वयं जूझने पर मजबूर हो गया था।"[2]

कहने का लब्बोलुआब है कि अविभाजित भारत के समक्ष एक ऐसी राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और मानसिक परिस्थितियाँ खड़ी थीं जिसका कोई अंदेशा उनको दस–बीस वर्ष पहले न रहा होगा। यह सब कुछ एकदम किसी कल्चरल शॉक की तरह था। स्वाधीनता का वर्ष 1947 सांस्कृतिक स्तर पर भी भारी उथल–पुथल का था क्योंकि जिस सांप्रदायिकता का विषबेल ब्रिटिश हुकूमत ने पिछले सौ सालों में भारतीय उपमहाद्वीप में बोया था, उसकी फसलें अब लहलहाने लगी थी। राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन की तमाम उपलब्धियों के बावजूद ब्रिटिश हुकूमत अपनी चाल में न केवल कामयाब रही बल्कि भारत को दो टुकड़ों में बांटने के साथ–साथ उसने एक ही समाज में रहने वाले विभिन्न धर्मावलंबियों के बीच भी हमेशा के लिए सरहद खींच दी, जिसकी न तो पहरेदारी की जा सकती थी और न ही उसे पूर्णतः मिटाया जा सकता था। अब चाहे वे भले ही लोकतांत्रिक धर्मनिरपेक्ष गणराज्य का हिस्सा ही क्यों न हों! सांप्रदायिकता की वह फाल्ट लाइन आज तक हमारे समाज

में विद्यमान है, जिसकी दोनों तरफ 'वे' और 'हम' की मुद्रा अपनाए जन हैं! वही जन जिन्होंने 1857 से 1947 तक दमनकारी बर्बर अंग्रेजी के खिलाफ एक सदी तक साझी लड़ाईयां लड़ी थी, साझी शहादत दी थी!

बहरहाल आलोच्य कहानी 'अमृतसर आ गया है' का प्रकाशन वर्ष भले ही 1973 ई. है परंतु कथा–समय 15 अगस्त 1947 से ठीक पहले का है, जिसका स्पष्ट प्रमाण कहानी में कुछ यूँ है : ".. मैं मन ही मन बड़ा खुश था क्योंकि दिल्ली में होने वाला स्वतंत्रता–दिवस समारोह देखने जा रहा था।"[3]

यह कहानी भारत–विभाजन की पृष्ठभूमि पर आधारित शरणार्थियों की रेल–यात्रा के जरिए उस दौर के संकटों को सामने लाती है। कहानी कला की दृष्टि से ये बात काबिले–गौर है कि रेल अमृतसर जा रही है इसका उल्लेख तो है लेकिन कहाँ से खुली है, उसे गौण रखा गया है जिसका अर्थ है कि वह पाकिस्तान का कोई भी शहर–कस्बा हो सकता है। हर जगह की स्थिति तो लगभग एक–सी ही थी। यहाँ पाठकों को छूट है कि वे कोई भी शहर मान लें। बहरहाल रेल के डब्बे में कुछ पठान हैं, कुछ सरदार, कुछ हिन्दू, वृद्धा जिनमें अधिकांश शरणार्थी हैं। समाजिक संरचना का एक छोटा–सा मॉडल दिखता है रेल के डब्बे में। इसी प्रकार डब्बे का पूरा माहौल वैसा ही है जैसा कि बाहर समाज का। तो यह कहने की छूट ली जा सकती है कि यहाँ रेल का डब्बा समाज का प्रतिनिधित्व कर रहा। यह बात एक अन्य अर्थ में भी प्रतीकित होती है कि रेल–यात्रा समाज के उस संक्रमण की यात्रा को दर्शाती है जिससे समाज गुजर रहा था। यानी कि विस्थापन, धार्मिक ध्रुवीकरण, दंगे, प्रशासनिक अराजकता, राज्यविहीनता की स्थिति, सामाजिक–आर्थिक अव्यवस्था, हिंसा, बलात्कार, लूट, चोरी, सहायता, सहिष्णुता आदि के उठते–गिरते समुद्री लहर के आवेग पर समाज सवार था। रेल–यात्रा का प्रतीक बहुत कुशलता से इस सांस्कृतिक और राजनीतिक संक्रमण को उभार पाता है। कहानी में उस दौर के परिवेश की छाया के चिह्न जगह–जगह बिखरे पड़े हैं। उदाहरणार्थ कहानी का निम्नांकित अंश द्रष्टव्य है :

"उन्हीं दिनों पाकिस्तान के बनाए जाने का ऐलान किया गया था और लोग तरह–तरह के अनुमान लगाने लगे थे कि भविष्य में जीवन की रूपरेखा कैसी होगी। पर किसी की कल्पना दूर तक नहीं जा पाती थी।"[4]

हालांकि किसी भी रेल–यात्रा में राजनीतिक बातें होना, हँसी–दिलग्गी बहुत आम बात है। इतने वर्षों बाद भी रेलवे के सामान्य डब्बों की तस्वीर करीब–करीब वैसी ही है कि सहयात्री आपस में राजनीतिक बातें करते हैं, हँसी–मजाक और सीट वगैरह के लिए आपसी नोक–झोंक चलती रहती है। लेकिन दिल्ली को जाने वाली सन 47 की वह ट्रेन कई मायनों में उस क्षण एकदम अलग हो जाती है जब यात्रियों को एक स्टेशन पर दंगों की आहट मिलती है और पूरी की पूरी ट्रेन दंगों के मध्य वेध्य स्थिति को प्राप्त हो जाती है। वह क्षण कहानी में कुछ यूँ वर्णित है : "गाड़ी वहाँ थोड़ी देर के लिए खड़ी रही। पर छूटने से पहले एक छोटी सी घटना घटी। एक आदमी साथवाले डिब्बे में से पानी लेने उतरा और नल पर जाकर पानी लोटे में भर रहा था जब वह भागकर अपने डिब्बे की ओर लौट आया। छलछलाते लोटे में से पानी गिर रहा था। लेकिन जिस ढंग से वह भागा था उसी ने बहुत कुछ बता दिया था। नल पर खड़े और लोग भी, तीन या चार आदमी रहे होंगे–इधर–उधर अपने–अपने डिब्बे की ओर भाग गए थे। इस तरह भागते लोगों को मैं देख चुका था। देखते–ही–देखते प्लेटफार्म खाली हो गया।"[5] रेल वजीराबाद पहुँच चुकी थी। कहानी में इसके कई संकेत मिलते हैं कि वजीराबाद मुस्लिम बहुल शहर है। यहाँ दंगे हो रहे हैं। कहानी का मुख्य तनाव इसी स्टेशन से तब शुरू होता है जब एक वहाँ के दंगों से किसी प्रकार बच कर निकलने की कोशिश करता एक परिवार गाड़ी में सवार होता है। उस वक्त रेलगाड़ियों में क्षमता से अधिक सवारियां सवार होती थीं तो यह बिल्कुल सहज था कि नई आने वाली सवारियों का पुराने सवारी थोड़ा विरोध करते। जब वह हिंदू प्रतीत होता परिवार दाखिल होता है तो सामान्यतः सभी सवारियां उनका विरोध करती हैं किंतु डब्बे में मौजूद दो पठान, जो वजीराबाद शहर का नाम जानकर तनावमुक्त और आत्मविश्वास से भरे हुए थे; उन दोनों ने सीमा पार कर दी। एक पठान ने उस परिवार के पुरुष सदस्य पर लात चला दी लेकिन पुरुष को लगने की बजाए उसकी पत्नी के सीने पर वह सीधे लग गई तो दूसरे पठान ने ट्रेन के खुलते ही उनका संदूक डब्बे के बाहर फेंक दिया, जिसके कारण उस परिवार को

गाड़ी से उतरना पड़ गया। कोई सामान्य समय होता तो इस स्थिति के विशेष निहितार्थ न निकलते लेकिन वह साम्प्रदायिक दंगों की चपेट में झुलसता काल था। डब्बे में मौजूद हिन्दू और सिख सवारियां जो पहले से ही वजीराबाद के नाम से खौफजदा थीं, इस घटना के कारण सख्त सदमे में चली गईं। वहीं उपस्थिति दुबले बाबू के पात्र पर धार्मिक तनाव का प्रतिबिंबन होता है। यह वही पात्र है जिससे सरदार तरह–तरह की ठिठोलियाँ कर रहे थे, बातचीत हो रही थी। लेकिन इस घटना ने पठानों और हिन्दू यात्रियों के बीच एक विभाजन कर दिया था। चूंकि मुस्लिम बहुल इलाके के दंगों से जान बचा कर भागते परिवार को इन पठानों ने जानबूझकर बलपूर्वक फिर से मौत के मुँह में धकेल दिया था। यह किसी दृष्टि से क्षम्य नहीं है। इस स्थिति को उतने तनावपूर्ण परिवेश में तो सामान्यीकृत तो नहीं ही किया जाना चाहिए कि यात्रियों का आपसी झंझटनुमा कुछ था। इस घटना में साम्प्रदायिक अन्तर्धध्वनि को नकारना यथार्थ पर मुलम्मा चढ़ाना होगा। कहानीकार ने भी बिना किसी लाग–लपेट के इस सत्य को रखा है। कहानी की सबसे प्रमुख घटना तब घटित होती है जब रेल अमृतसर पहुँचती है। वहाँ पहुँचते ही दुबला बाबू आत्मविश्वासमिश्रित क्रोध से फट पड़ता है। द्रष्टव्य है : "वह फिर ऊँची आवाज में चिल्लाया 'अमृतसर आ गया है!' उसने फिर से कहा और उछलकर खड़ा हो गया, और ऊपरवाली बर्थ पर लेटे पठान को संबोधन करके चिल्लाया, 'ओ पठान के बच्चे! नीचे उतर तेरी माँ की..नीचे उतर, तेरी उस पठान बनाने वाली की मैं..' बाबू चिल्लाने लगा और चीख–चीख कर गालियाँ बकने लगा था।..'नीचे उतर, तेरी मैं.. हिन्दू औरत को लात मारता है, हरामजादे, तेरी उस.."[6] यहाँ यह तथ्य विचारणीय है कि जिन तर्कों से पठान ने वजीराबाद में हिन्दू परिवार के साथ बदसलूकी करके डब्बे से भगा दिया था और किसी ने प्रतिकार करने के लिए चूं शब्द नहीं कहा था। ठीक उन्हीं तर्कों के आधार पर अमृतसर आते ही दुबला बाबू पठानों पर बरसने लगता है और दुबले बाबू की ही भांति अब अमृतसर में पठानों की आवाज क्षीण पड़ जाती है। सांप्रदायिकता किसी धर्म की हो वो इस मायने में बिल्कुल एक–सी है कि दोनों दुहाई अन्याय की देते हैं कि हमारे साथ अन्याय हुआ है लेकिन अवसर आने पर वह स्वयं भी अन्याय, अमानवीयता को ही दोहराती है। सांप्रदायिकता चाहे जितने तर्क गढ़ ले लेकिन उसकी मंजिल मनुष्यता की रक्षा नहीं है।

दुबले बाबू और पठानों के मध्य हुई इस एकतरफा झड़प के बाद पठान मौका पा कर मुस्लिम बहुल डब्बे में चले जाते हैं। कहानी में स्पष्ट उल्लेख है कि "पर इस बीच डिब्बे के तीनों पठान, अपनी–अपनी गठरी उठाकर बाहर निकल गए और अपने पठान साथियों के साथ गाड़ी के अगले किसी डिब्बे की ओर आगे बढ़ गए। जो विभाजन पहले प्रत्येक डिब्बे के भीतर हो रहा था, अब सारी गाड़ी के स्तर पर होने लगा था।"[7]

जैसा कि पूर्व में हमने कहा कि सांप्रदायिकता किसी धर्म की हो उसकी कार्यशैली और क्रियान्वयन में बहुत फर्क नहीं होता। हाँ उनका इतिहासबोध, राजनीतिक–सामाजिक बोध अवश्य अलग–अलग होता है।

कहानी के उत्तरार्द्ध में, पठानों के डिब्बे से गायब हो जाने के बाद दुबला बाबू का पात्र छड़ ढूंढ कर अपने साथ डिब्बे में लाता है। लेकिन पठानों को वहाँ न पाकर आवेशित हो जाता है। उस पर खून सवार रहता है। जब ट्रेन अमृतसर से गुजरते हुए हिंदू–सिख बहुल इलाकों में पहुँचती है तो हू–ब–हू वही दृश्य उपस्थित होता है, जो वजीराबाद में हुआ था। बस फर्क यहाँ इतना है कि मदद मांगने वाला परिवार मुस्लिम धर्मावलंबी है। दुबले बाबू के पास यह विकल्प था कि वह खुद को और अपने धर्म को अधिक मानवीय सिद्ध कर सकता था लेकिन वह दौर अभूतपूर्व सांप्रदायिक उन्माद का था। तिस पर जिन घटनाओं का वह प्रत्यक्षदर्शी रह चुका था बीते कुछ घंटों में, कुछ उसके भी कारण उसने ट्रेन में घुसने का प्रयास करते मुस्लिम परिवार के मुखिया के सिर पर प्राणघातक प्रहार कर दिया : "और उसी वक्त मैंने बाबू के हाथ में छड़ को चमकते देखा। एक ही भरपुर वार बाबू ने उस मुसाफिर के सिर पर किया था।..तभी सहसा डण्डहरे पर से उस आदमी के दोनों हाथ छूट गए और वह कटे पेड़ की भांति जा गिरा। और उसके गिरते ही औरत ने भागना बंद कर दिया, मानो दोनों का सफर एक साथ ही खत्म हो गया हो।"[8]

यहाँ कहानी में भी कई संकेत हैं जिनका उपयोग दुबले बाबू की हिंसा को जायज ठहराने के लिए किया जा सकता है, जैसा कि

हमने ऊपर देखने की कोशिश की है कि किन–किन कारणों से उसने वही कदम उठाया जो पठानों ने किया था। लेकिन इन सभी तर्कों के बावजूद यह कहना कहीं से भी अनुचित नहीं है कि दुबले बाबू का हिन्दू पात्र सांप्रदायिकता से संघर्ष नहीं कर रहा था बल्कि सांप्रदायिकता के उन्माद को बढ़ाता ही है। इस परिस्थिति को थोड़ा उलट कर देखते हैं कि क्या पठानों ने उस हिंदू परिवार की वजीराबाद में मदद की होती तो बदले में दुबला बाबू भी अमृतसर में मुस्लिम परिवार की मदद करता? इसकी क्या प्रमाण है? यदि क्रिया–प्रतिक्रिया की तर्ज पर ही सोचें तो क्या उसने जीवन में कभी दयालु और सहिष्णु मुस्लिम न देखा होगा? तो क्या उनकी स्मृति की अवहेलना वह नहीं कर रहा एकमात्र आँखों देखी घटना के आधार पर? यही प्रश्न पठानों से भी बनता है। उनके कृत्य को भी जायज नहीं ठहराया जा सकता है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि सांप्रदायिकता धर्म मात्र की समस्या है। इससे कोई भी धर्म अछूता नहीं है। ‘अमृतसर आ गया है’ कहानी के कई निहितार्थ हैं लेकिन एक जो प्रमुख ध्वनि इस कहानी में सुनाई देती है वह यह कि किसी साम्प्रदायिक व्यक्ति की अपनी सहधर्मियों के प्रति संवेदना भी संदिग्ध होती है। हिंसा से भरा हुआ व्यक्ति क्या घर–परिवार और समाज की स्त्रियों के प्रति सहिष्णु होगा? अपने समाज के निचले वर्ग के प्रति सहानुभूति रखता होगा? अपने धर्म के सभी जातियों के लोगों के साथ समतापूर्ण व्यवहार करता होगा? आवेश में भीड़ बनकर की गई सांप्रदायिक हिंसा किसी व्यक्ति के बेहतर मनुष्य होने का प्रमाण कतई नहीं है! यह भी कि बहुसंख्यकवाद जिस प्रकार धर्म के आधार पर निर्मित हो सकता है तो यह भी ध्यान रहे यह लैंगिक स्तर पर, भाषाई स्तर पर, जातिगत स्तर पर भी निर्मित होता है। धर्म आधारित बहुसंख्यकवाद को बढ़ावा देने वाले धर्म के अंदर बने वर्चस्वाधारित कई तरह के बहुसंख्यकवाद अथवा वर्चस्व को ढकने के लिए ही सांप्रदायिकता का सहारा लेते हैं।

वास्तव में यह कहानी वर्तमान समय में और भी प्रासंगिक हो चुकी है। इस कहानी को पढ़ते हुए गांधीवादी कथाकार–आलोचक राजकिशोर जी के कथन का स्मरण लाजमी हो जाता है कि “सांप्रदायिकता से लड़ने का एक बहुविदित तरीका यह है कि बहुसंख्यकों की सांप्रदायिकता से लड़ते हुए अल्पसंख्यकों की सांप्रदायिकता के प्रति सहनशीलता न दिखाई जाए।”[९] यहाँ यह भी जोड़ना आवश्यक प्रतीत होता है कि बहुसंख्यक कोई स्थिर परिभाषा नहीं है। जैसे कि मान लिया जाए बिहार–उत्तर प्रदेश में हिंदू बहुसंख्यक हैं लेकिन जम्मू–कश्मीर और लद्दाख में हिन्दू और बौद्ध अल्पसंख्यक हैं। पंजाब में हिंदू और मुस्लिम अल्पसंख्यक हैं। उत्तर पूर्व में ईसाई धर्मावलंबी बहुसंख्यक हैं। हालांकि इस जटिल यथार्थ को सामने रखते हुए भी हम इस सत्य को छिपा नहीं सकते कि हिन्दू बहुसंख्यकता का आतंक अल्पसंख्यकों पर कायम है। चाहे वह आजादी के बाद के सन 84 के सिख दंगे हों, 92 के बम्बई के दंगे हों अथवा 2002 के गुजरात दंगे। इसके समानांतर ही नब्बे के दशक में कश्मीर में कश्मीरी पंडितों का कश्मीर से निष्कासन तथा उनपर बरपाए गए साम्प्रदायिक कहर को भी याद रखना होगा! इति!

सन्दर्भ–सूची –

1. साहनी, भीष्म, आज के अतीत, राजकमल पेपरबैक्स, संस्करण – 2015, पृष्ठ– 133
2. साहनी, भीष्म, आज के अतीत, राजकमल पेपरबैक्स, संस्करण – 2015, पृष्ठ– 30
3. साहनी, भीष्म, प्रतिनिधि कहानियाँ, राजकमल पेपरबैक्स, संस्करण –2021, पृष्ठ– 65
4. साहनी, भीष्म, प्रतिनिधि कहानियाँ, राजकमल पेपरबैक्स, संस्करण –2021, पृष्ठ– 65
5. साहनी, भीष्म, प्रतिनिधि कहानियाँ, राजकमल पेपरबैक्स, संस्करण –2021, पृष्ठ– 67
6. साहनी, भीष्म, प्रतिनिधि कहानियाँ, राजकमल पेपरबैक्स, संस्करण –2021, पृष्ठ– 72
7. साहनी, भीष्म, प्रतिनिधि कहानियाँ, राजकमल पेपरबैक्स, संस्करण –2021, पृष्ठ– 73
8. साहनी, भीष्म, प्रतिनिधि कहानियाँ, राजकमल पेपरबैक्स, संस्करण –2021, पृष्ठ– 76
9. सं.डॉ. रणजीत, साम्प्रदायिकता का ज़हर, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण–2022, पृष्ठ– 203